

अलवर अंचल का मंदिर स्थापत्य: प्रतिहार युगीन कला से हवेली वास्तुकला एवं देवस्थान प्रशासनिक प्रबंधन का एक समालोचनात्मक अध्ययन

आशा कुमारी मीणा¹, प्रो. शरद राठौड़²

¹ शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, आई.आई.एस. विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

² प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, आई.आई.एस. विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-पत्र राजस्थान के उत्तर-पूर्वी अंचल में मंदिर वास्तुकला के 10वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक के ऐतिहासिक, कलात्मक एवं प्रशासनिक विकास क्रम का समालोचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का प्राथमिक ध्येय 10वीं शताब्दी के गुर्जर-प्रतिहार (बड़गूजर) युगीन 'महा-मारु' शैली के उत्कृष्ट स्थापत्य स्मारकों—राजोरगढ़ (पारानगर) के नीलकंठेश्वर महादेव मंदिर (मथनदेव कालीन, 959-960 ई.) तथा नौगजा दिगंबर जैन मंदिर (922-923 ई.)—से लेकर भानगढ़ के मध्यकालीन स्थापत्य एवं 18वीं-20वीं शताब्दी की अलवर रियासतकालीन 'सामरिक-हवेली वास्तुकला' का गहन विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करना है। इसके अतिरिक्त, यह शोध-पत्र अलवर के मंदिर स्थापत्य के भौतिक एवं तकनीकी पक्षों—जैसे 'सागर' जलाशय का जल-स्थापत्य संयोजन, महल चौक (जलेबी चौक) का राजसी स्थापत्य, अरावली के पत्थरों की बिना गारे की इंटर-लॉकिंग प्रविधि, गर्भगृहों का 'आरायश' शिल्प, तथा बाला किला एवं नगर-द्वारों के 'प्रहरी देवालय' स्वरूप—का पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में परीक्षण करता है। शोध का द्वितीय महत्वपूर्ण आयाम स्वतंत्रता-उत्तर राजस्थान में इन सांस्कृतिक धरोहरों के विधिक व प्रशासनिक प्रबंधन का प्रामाणिक अध्ययन है, जिसके अंतर्गत देवस्थान विभाग (सहायक आयुक्त कार्यालय, अलवर) के अधीन पंजीकृत कुल 665 संस्थानों (0 प्रत्यक्ष प्रभार, 8 आत्मनिर्भर, 35 सुपुर्दगी तथा 622 सहायता प्राप्त/एन्यूटी) का श्रेणीवार प्रामाणीकृत डेटा प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि अलवर के देवालय केवल अतीत की कलात्मक धरोहर नहीं हैं, बल्कि निरंतर पूजा-अर्चना एवं राजकीय-प्रशासनिक संरक्षण से संचालित 'जीवंत मंदिर' (Living Temples) परंपरा के अप्रतिम साक्ष्य हैं।

मुख्य शब्द (Keywords): अलवर मंदिर स्थापत्य, गुर्जर-प्रतिहार कला, महा-मारु शैली, नीलकंठेश्वर राजोरगढ़, सामरिक-हवेली वास्तुकला, सागर जल-स्थापत्य, देवस्थान विभाग अलवर, राजकीय सहायता प्राप्त मंदिर (Annuity), जीवंत मंदिर परंपरा।

राजस्थान का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से मत्स्य जनपद, सात्व देश तथा मध्यकाल में मेवात व अलवर रियासत के रूप में विख्यात रहा है। यह अंचल अरावली पर्वतमाला की सघन श्रेणियों, प्राकृतिक कंदराओं, घाटियों और जल-स्रोतों से आच्छादित होने के कारण प्राचीन काल से ही सामरिक सुरक्षा, व्यापारिक मार्गों के नियमन एवं अध्यात्मिक साधना का प्रमुख केंद्र बना रहा। इस भौगोलिक विशिष्टता ने यहाँ की वास्तुकला, विशेषकर मंदिर स्थापत्य को एक अद्वितीय क्षेत्रीय स्वरूप प्रदान किया। 8वीं से 10वीं शताब्दी के गुर्जर-प्रतिहार (बड़गूजर) शासनकाल में राजोरगढ़ (प्राचीन राजयपुर या पारानगर) जैसे समृद्ध नगरों की स्थापना हुई, जो उत्तर भारत में पाषाण वास्तुकला एवं मंदिर शिल्प के सिरमौर केंद्र बने। आगे चलकर 18वीं शताब्दी में कछवाहा राजपूत वंश के राव राजा प्रताप सिंह द्वारा स्वतंत्र अलवर राज्य की स्थापना के उपरांत, महाराजा बख्तावर सिंह, महाराजा विनय सिंह, महाराजा जय सिंह तथा महाराजा तेज

सिंह के संरक्षण में यहाँ के धार्मिक स्थापत्य ने 'सामरिक-हवेली वास्तुकला' (Military-Haveli Architecture) तथा कलात्मक जल-स्थापत्य का अत्यंत विकसित व अनूठा रूप धारण किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में अलवर अंचल के मंदिर स्थापत्य के 1000 वर्षों के कलात्मक हस्तांतरण, तकनीकी नवाचारों एवं स्वतंत्रता-उत्तर राजस्थान में देवस्थान विभाग द्वारा इसके विधिक व वित्तीय प्रबंधन का समालोचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय मंदिर वास्तुकला की मुख्य 'सशिखर' नागर शैली का अत्यंत समृद्ध और प्राचीन प्रभाव अलवर अंचल के धार्मिक स्थापत्य में दिखाई देता है। नागर शैली की आधारभूत पहचान उसका वर्गाकार गर्भगृह, उसके ऊपर निर्मित रेखीय या उरुशृंग युक्त ऊर्ध्व शिखर, आमलक और सर्वोच्च कलश नियोजन है। अलवर जिले में नागर शैली का सबसे भव्य एवं पुरातात्विक रूप से प्रामाणिक उदाहरण राजगढ़ तहसील के पारानगर (राजोरगढ़) में स्थित नीलकंठेश्वर महादेव मंदिर है। इस देवालय का निर्माण गुर्जर-प्रतिहार सम्राट विजयपाल के सामंत बड़गूजर राजा मथनदेव द्वारा अपनी पूज्य माता लच्छुका की पावन स्मृति में विक्रम संवत् 1016 (959-960 ईस्वी) में कराया गया था। इसके अतिरिक्त, सरिस्का बाघ अभयारण्य की उपत्यकाओं में स्थित भानगढ़ का ऐतिहासिक श्री सोमेश्वर महादेव मंदिर एवं गोपीनाथ मंदिर (16वीं शताब्दी) तथा नौगांवा, बानसूर व राजगढ़ कस्बे के प्राचीन शिव व विष्णु देवालय नागर शैली के उरुशृंगीय और रेखीय पाषाण शिखरों को कलात्मक रूप से निरूपित करते हैं।

दक्षिण भारतीय मंदिर स्थापत्य की द्रविड़ शैली—जिसकी मुख्य पहचान पिरामिडनुमा बहु-स्तरीय विमान शिखर, विशाल परकोटा तथा अलंकृत प्रवेश द्वार (गोपुरम) विन्यास है—अलवर के रियासतकालीन धार्मिक स्थापत्य में एक अद्भुत सांस्कृतिक समन्वय के रूप में प्रस्फुटित हुई। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी के दौरान जब अलवर रियासत में जगन्नाथ संप्रदाय और रामानंदी वैष्णव परंपरा का व्यापक प्रसार हुआ, तब राजसी संरक्षण में निर्मित मंदिरों में द्रविड़ वास्तुकलात्मक तत्वों को कुशलतापूर्वक समाहित किया गया। इसका प्रमुख उदाहरण अलवर शहर के पुराना कटला में स्थित श्री जगन्नाथ जी मंदिर है, जहाँ दक्षिण भारतीय द्रविड़ स्थापत्यगत परकोटे और गोपुरम प्रभाव की स्पष्ट छाप मिलती है। इसी प्रकार, सिटी पैलेस (राजभवन) परिसर के जलेबी चौक स्थित श्री राधा गोविंददेव जी मंदिर के ऊपरी आच्छादन व अलंकृत स्तंभों में द्रविड़ शैली की सौंदर्यपरक कलात्मकता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

नागर और द्रविड़ शैलियों का संकर व समन्वित रूप 'वेसर शैली' कहलाता है। अलवर अंचल के रियासतकालीन स्थापत्य में उत्तर भारतीय नागर शिखर और दक्षिण भारतीय द्रविड़ स्तंभों, बहु-कोणीय मेहराबों व छतरियों का जो अनुपम संगम मिलता है, वह स्थानीय वेसर विन्यास का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसका सबसे जीवंत साक्ष्य अलवर शहर के सिटी पैलेस (महल चौक/जलेबी चौक) परिसर तथा ऐतिहासिक 'सागर' (जलाशय) तटबंधीय मंदिर संकुल में दिखाई देता है। महाराजा विनय सिंह द्वारा निर्मित सागर जलाशय के चारों ओर स्थित देवालय—जैसे श्री गोपीनाथ जी, श्री गोपीवल्लभ जी एवं विशेश्वर महादेव मंदिर—राजपूत, मुगल और दक्षिण भारतीय वास्तुकलात्मक स्तंभों, जालीदार झरोखों व बहु-स्तरीय छतरियों के वेसर स्थापत्यीय संगम को अत्यंत गरिमापूर्ण ढंग से निरूपित करते हैं।

पंचायतन भू-योजना में मुख्य गर्भगृह के केंद्रीय देवालय के चारों कोनों पर चार सहायक सह-देवालयों की स्थापना की जाती है। मध्यकालीन एवं प्रतिहार कालीन अलवर में पंचायतन योजना का अत्यंत व्यापक और व्यवस्थित प्रयोग देखने को मिलता है। इसका स्पष्ट पुरातात्विक साक्ष्य भानगढ़ के सोमेश्वर महादेव मंदिर संकुल में मिलता है, जहाँ मुख्य शिव मंदिर के चारों कोनों पर गणेश, विष्णु, सूर्य व शक्ति के सहायक कोष्ठक निर्मित हैं। इसी प्रकार, राजोरगढ़ के नीलकंठ संकुल में मुख्य शिवलिंगम के चारों ओर निर्मित सह-देवताओं के कोष्ठक स्थापत्यीय पंचायतन नियोजन की प्राचीन परंपरा को सिद्ध करते हैं।

मंदिर संरचना का अंतरतम पवित्रतम स्थल 'गर्भगृह' या 'निज मंदिर' कहलाता है, जहाँ मुख्य देव-विग्रह प्रतिष्ठित होता है। अलवर के पुष्पिमागीय व रामानंदी हवेली मंदिरों—जैसे हजारी मोहल्ला का श्री मथुराधीश जी मंदिर (1903 ई.) तथा मुंशी बाजार का श्री बिहारी जी मंदिर—के गर्भगृहों में अत्यधिक सात्विक एवं ध्यान-अनुकूल वातावरण निर्मित किया गया है। यहाँ की भीतरी दीवारों पर राजस्थान के पारंपरिक स्थापत्य की विशिष्ट तकनीक 'आरायश' (Arayash - चूने व कली की दर्पण जैसी अति-चिकनी घिसाई कार्य) का व्यापक प्रयोग किया गया है। यह शिल्प दीवारों को न केवल संगमरमर जैसी सफेदी और चमक प्रदान करता है, बल्कि भीषण ग्रीष्मकाल में भी गर्भगृह के आंतरिक वातावरण को अत्यधिक शीतल बनाए रखता है।

गर्भगृह के सम्मुख स्थित स्तंभों युक्त विस्तृत सभा भवन 'मंडप' तथा गर्भगृह व मंडप के बीच का सूक्ष्म गलियारा 'अंतराल' कहलाता है। अलवर के हवेली मंदिरों में श्रद्धालुओं के एकत्रीकरण हेतु विशाल खुले चौक व सभा मंडप का निर्माण किया गया है। अरावली के लाल, गुलाबी व बादामी बलुआ पत्थरों पर उकेरी गई बारीक नक्काशी, कलात्मक ब्रेकेट (मदालक) और बहु-कोणीय मेहराबें इन मंडपों की मुख्य स्थापत्य पहचान हैं। गर्भगृह के ऊपर निर्मित ऊर्ध्व पाषाण संरचना 'शिखर', उसके शीर्ष पर स्थित चक्राकार पाषाण 'आमलक' तथा सर्वोच्च 'कलश' मंदिर के पवित्र अंग हैं। नीलकंठेश्वर (राजोरगढ़) का भव्य नागर शिखर महा-मारु परंपरा के उरुशृंगों और कूट-शिखर विन्यास से सज्जित है। वहीं सागर जलाशय की कलात्मक सीढ़ियों पर स्थित मंदिर अत्यधिक ऊँची पाषाण 'जगती' (Plinth) पर निर्मित हैं, जो जल-स्थापत्यगत सुरक्षा व सौंदर्यपरक भव्यता प्रदान करती हैं।

राजस्थान के स्थापत्य इतिहास में 8वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य गुर्जर-प्रतिहार राजवंश के संरक्षण में 'महा-मारु' शैली का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तर-पूर्वी राजस्थान में अलवर का राजोरगढ़ (प्राचीन राजयपुर/पारानगर, राजगढ़ तहसील) महा-मारु स्थापत्य कला का सिरमौर केंद्र रहा है। गुर्जर-प्रतिहार सम्राट विजयपाल के शासनकाल में उनके बड़गुजर सामंत राजा मथनदेव द्वारा संवत 1016 (959-960 ईस्वी) में निर्मित नीलकंठेश्वर महादेव मंदिर (मूल नाम लच्छुकेश्वर) महा-मारु शैली का अप्रतिम पाषाण स्मारक है। यह मंदिर तीन गर्भगृहों/दिशाओं की विशिष्ट 'त्रिकुटाकार' (Tri-kuta) योजना पर आधारित है, जिसके रंगमंडप में बने गोल पाषाण स्तंभ (Round Pillars) अत्यंत सूक्ष्म लताओं, नर्तकियों व गंधर्वों की आकृतियों से अलंकृत हैं। गर्भगृह में 6 फीट ऊँचा विशाल शिवलिंग स्थापित है तथा पश्चिमी कोष्ठक पर आठ भुजायुक्त 'त्रिपुरांतक शिव' की दुर्लभ प्रतिमा उकेरी गई है।

राजोरगढ़ के नीलकंठेश्वर एवं पारानगर के मध्यकालीन मंदिरों की सबसे अद्भुत तकनीकी विशेषता यह है कि इनका निर्माण बिना किसी चूने, मिट्टी या सीमेंट के केवल पाषाण खाँचों (Interlocking System) द्वारा किया गया है। पत्थरों को आपस में इस प्रकार पिरोया गया है कि प्राकृतिक आपत्तियों और भूकंप के झटकों के बावजूद ये संरचनाएँ सदियों से सुदृढ़ और अक्षुण्ण बनी हुई हैं। नीलकंठेश्वर मंदिर के पास ही संवत 979 (922-923 ईस्वी) के शिलालेखीय साक्ष्य के अनुसार कन्नौज के प्रतिहार राजा महीपाल देव के समय धर्कट परिवार के सर्वदेव द्वारा निर्मित नौगजा दिगंबर जैन मंदिर स्थित है। इस मंदिर में तीर्थंकर शांतिनाथ/पार्श्वनाथ की 16 फीट ऊँची एकल पाषाण प्रतिमा ('नौगजा') स्थापित है, जो प्रतिहार युगीन जैन मूर्तिकला व स्थापत्य का विश्व प्रसिद्ध साक्ष्य है। राजोरगढ़ के अतिरिक्त भानगढ़ तथा थानागाजी तहसील का गढ़ बसई क्षेत्र महा-मारु शैली के प्रमुख पुरातात्विक केंद्र हैं।

11वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य सोलंकी/चालुक्य तथा परमार काल में 'मारु-गुर्जर' (सोलंकी) शैली का परिपक्व रूप विकसित हुआ। इस शैली में अलंकृत वितान (Ceilings), संगमरमर का प्रयोग, पद्मशिला तथा अनेकाण्डक शिखर मुख्य पहचान बने। अलवर जिले के तिजारा स्थित प्राचीन जैन मंदिरों (भगवान चंद्रप्रभु स्वामी जी) तथा अलवर शहर

के कछवाहा-कालीन मंदिरों की वेदियों व पच्चीकारी कार्य में मारु-गुर्जर स्थापत्य परंपरा की स्पष्ट छाप दिखती है। इसी प्रकार, नागर शैली की विशिष्ट उप-शैली 'भूमिज स्थापत्य' की मुख्य पहचान शिखर पर उरुशृंगों की ऊर्ध्वाधर पंक्तियाँ तथा तारकीय (Stellate) भू-योजना है। अलवर की अरावली पर्वत शृंखलाओं में स्थित राजगढ़, थानागाजी व बानसूर परगनों के प्राचीन पहाड़ी शिवालियों व थानों में भूमिज विन्यास की उरुशृंगीय पंक्तियाँ व ज्यामितीय जल-धारी नियोजन के पुरातात्विक साक्ष्य विद्यमान हैं।

मंदिर भू-विन्यास में प्रदक्षिणा-पथ के नियोजन के आधार पर सांधार और निरंधार प्रासाद का वर्गीकरण किया जाता है। गर्भगृह के चारों ओर आंतरिक ढका हुआ परिक्रमा मार्ग होने पर मंदिर 'सांधार' तथा प्रदक्षिणा-पथ न होने पर 'निरंधार' कहलाता है। अलवर शहर का ऐतिहासिक श्री जगन्नाथ जी मंदिर (पुराना कटला) तथा राजोरगढ़ का नीलकंठेश्वर मंदिर सांधार योजना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जहाँ श्रद्धालु गर्भगृह के भीतरी आच्छादित मार्ग में परिक्रमा करते हैं। इसके विपरीत, ग्रामीण अंचल के छोटे देवालय तथा दुर्ग व नगर द्वारों के रक्षक 'थान' निरंधार श्रेणी में आते हैं, जहाँ बाहरी प्रांगण या मंडप का प्रयोग ही परिक्रमा हेतु किया जाता है।

अलवर के रियासतकालीन स्थापत्य की सबसे बड़ी विशेषता इसका जल-स्थापत्य एवं सामरिक नगर-नियोजन के साथ धार्मिक संरचनाओं का सुंदर एकीकरण है। महाराजा विनय सिंह द्वारा 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निर्मित ऐतिहासिक 'सागर' (जलाशय) की कलात्मक सीढ़ियों, बुजों व तटबंध पर स्थित देवालय—श्री गोपीनाथ जी मंदिर व श्री गोपीवल्लभ जी मंदिर जल-स्थापत्य की अनूठी मिसाल हैं। जलाशय के निर्मल जल में इन मंदिरों की छतरियों, शिखरों और मेहराबों का प्रतिबिंब एक अत्यंत अलौकिक दृश्य उत्पन्न करता है, जो राजपूत स्थापत्यकार द्वारा प्राकृतिक जल-स्रोतों और धार्मिक देवालयों के मध्य स्थापित किए गए गहन संतुलन को सिद्ध करता है।

अलवर रियासत (18वीं से 20वीं शताब्दी - राव राजा प्रताप सिंह, महाराजा विनय सिंह, जय सिंह व तेज सिंह) के दौरान निर्मित मंदिरों में एक साझी 'सामरिक-हवेली वास्तुकला' (Military-Haveli Architecture) परिलक्षित होती है। बाह्य रूप से सुदृढ़ रक्षात्मक प्राचीर या गढ़ीनुमा दीवारें और भीतर खुला विशाल चौक व सभा मंडप हवेली विन्यास को निरूपित करता है। निर्माण में स्थानीय अरावली पर्वतमाला से प्राप्त लाल, गुलाबी, बादामी व धूसर बलुआ पत्थरों तथा चूने-गारे का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त, सिटी पैलेस परिसर के महल चौक (जलेबी चौक) के भीतर स्थित श्री राधा गोविंददेव जी मंदिर (1815-1857 ई.) व श्री बृजनंदन जी मंदिर राजप्रासाद स्थापत्य और वैष्णव हवेली शैली के कलात्मक समन्वय के अप्रतिम उदाहरण हैं।

सामरिक दृष्टिकोण से, अलवर के ऐतिहासिक बाला किला दुर्ग (1049 ई. अलुघराय कालीन / कछवाहा निर्मित) के भीतर निकुंभ महल परिसर में 15 प्राचीन मंदिर स्थित हैं। इनमें श्री गोपेश्वर जी महाराज मंदिर, सीता-राम मंदिर व हनुमान मंदिर प्रमुख हैं, जो दुर्ग में तैनात सैनिकों और राजपरिवार के सदस्यों की दैनिक आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। पहाड़ियों की ऊँची चोटियों पर प्राकृतिक शिलाखंडों को जगती के रूप में प्रयुक्त करके निर्मित ये मंदिर दुर्ग स्थापत्य और धार्मिक श्रद्धा के अनोखे संगम को प्रदर्शित करते हैं।

अलवर शहर के परकोटे और सामरिक नगर-नियोजन में नगर के सुरक्षा द्वारों पर रक्षक देवताओं की स्थापना की गई। पुराने शहर के 6 प्रमुख प्रवेश द्वारों—दिल्ली दरवाजा पर श्री गंगा महारानी जी मंदिर, लाड़िया गेट पर श्री भैरू जी मंदिर, मालाखेड़ा दरवाजा, हजूरी दरवाजा, सोभिया दरवाजा व मन्नाका दरवाजा—पर 'प्रहरी देवालय' स्थापित किए गए। यह मान्यता थी कि नगर द्वारों पर प्रतिष्ठित ये देव विग्रह बाह्य आक्रमणों, महामारियों और प्राकृतिक आपदाओं से नगर निवासियों की आध्यात्मिक सुरक्षा करते हैं।

अलवर का धार्मिक स्थापत्य केवल ईट-पत्थर के शिखरों तक सीमित नहीं है, बल्कि अरावली की प्राकृतिक कंदराओं के साथ लोक-आस्था के समन्वय को भी दर्शाता है। सरिस्का अभयारण्य की प्राकृतिक घाटियों के बीच स्थित पांडुपोल हनुमान मंदिर में हनुमान जी की विश्राम/लेटी हुई अद्वितीय 'शयन-मुद्रा' प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जो संपूर्ण भारत में दुर्लभ है। इसी प्रकार, महाराजा जयसिंह द्वारा 1924 में पुनर्गठित भर्तृहरि धाम की नाथ-सिद्ध पीठ एवं अरावली कंदरा आधारित ध्यान स्थल, तथा धौलीदूब का संत लालदास जी महाराज का स्थल निर्गुण-सगुण भक्ति परंपरा व लोक-स्थापत्य के संगम को दर्शाते हैं।

स्वतंत्रता-उत्तर राजस्थान में धार्मिक-सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और मंदिरों के सुव्यवस्थित विधिक व वित्तीय प्रबंधन हेतु देवस्थान विभाग (सहायक आयुक्त कार्यालय, अलवर) मुख्य प्रशासनिक इकाई के रूप में कार्य करता है। विभाग द्वारा अलवर जिले की समस्त धार्मिक संपत्तियों का प्रलेखन, जी.आई.एस. मैपिंग, यूनीक कोड आवंटन तथा सेवा-पूजा हेतु वित्तीय अनुदान वितरित किया जाता है। प्रामाणीकृत सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार अलवर जिले के अंतर्गत कुल 665 मंदिर एवं धार्मिक संस्थान पंजीकृत हैं, जिनका वर्गीकरण चार प्रमुख प्रशासनिक श्रेणियों में किया गया है।

देवस्थान विभाग की पहली प्रशासनिक श्रेणी 'राजकीय प्रत्यक्ष प्रभार श्रेणी' (State Direct Charge Category) कहलाती है, जिसमें राज्य सरकार द्वारा शत-प्रतिशत वित्तीय एवं प्रशासनिक प्रबंधन सीधे संचालित किया जाता है। उल्लेखनीय प्रामाणिक तथ्य यह है कि अलवर जिले में इस श्रेणी के अंतर्गत कोई भी मंदिर (0) दर्ज नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि रियासतकालीन विलय के समय अलवर के अधिकांश मंदिरों को आत्मनिर्भर, सुपुर्दगी या सहायता प्राप्त (एन्न्यूटी) श्रेणी के अंतर्गत नामांकित किया गया था।

विभाग की द्वितीय श्रेणी 'राजकीय आत्मनिर्भर श्रेणी' (State Self-Sustaining Category) है, जिसमें कुल 8 मंदिर पंजीकृत हैं। ये वे राज्य-संरक्षित मंदिर हैं जिनकी अपनी स्वतंत्र अचल संपत्ति, कृषि भूमि या आय के स्रोत हैं और इनका संचालन देवस्थान विभाग के निर्देशन में अधिकृत पुजारियों द्वारा किया जाता है। अलवर जिले के इन आत्मनिर्भर श्रेणी के 8 मंदिरों का प्रामाणिक विवरण—जैसे हजारी मोहल्ला का श्री मथुराधीश जी मंदिर (यूनीक कोड 2025), महल चौक का श्री राधा गोविंददेव जी मंदिर (यूनीक कोड 2027), सागर ऊपर स्थित श्री गोपीवल्लभ जी मंदिर (यूनीक कोड 2022), गोविंदगढ़ किले का श्री गोविंद देव जी मंदिर (यूनीक कोड 2028), लक्ष्मणगढ़ का श्री मुरली मनोहर जी मंदिर (यूनीक कोड 2026), राजगढ़ के डेहरा का श्री दाऊ जी महाराज मंदिर (यूनीक कोड 2021), बलदेवगढ़ का श्री लक्ष्मीनारायण जी मंदिर (यूनीक कोड 2024), तथा थानागाजी के द्वारापुरा का श्री जगदीश जी मंदिर (यूनीक कोड 2023)—सरकारी मास्टर सूची में दर्ज है।

तीसरी प्रशासनिक श्रेणी 'राजकीय सुपुर्दगी श्रेणी' (State Handed-Over Category) है, जिसके अंतर्गत अलवर जिले में कुल 35 मंदिर पंजीकृत हैं। ये राज्य सरकार के स्वामित्व वाले मंदिर हैं, जिनका दैनिक सेवा-पूजा एवं व्यवस्थागत प्रबंधन 29 जनवरी 1997 की राजपत्र अधिसूचना के तहत स्थानीय पुजारियों, महंतों या प्रबंध समितियों को सौंपा गया है। इसके प्रमुख उदाहरणों में मोती ढूंगरी स्थित मंदिर श्री मंगल बिहारी जी (यूनीक कोड 30222), कृष्ण कुंड का मंदिर श्री चंद्र बिहारी जी (यूनीक कोड 30243), महल चौक का मंदिर श्री बृजनंदन जी (कोड 3026), तथा मुंशी बाजार का मंदिर श्री बिहारी जी (यूनीक कोड 30231) शामिल हैं।

चौथी और सबसे विशाल प्रशासनिक श्रेणी 'राजकीय सहायता प्राप्त श्रेणी' (State Aided / Annuity Category) है, जिसके अंतर्गत अलवर जिले में कुल 622 मंदिर पंजीकृत हैं। ये वे ग्रामीण एवं कस्बाई मंदिर हैं जिनका स्वामित्व

व प्रबंधन निजी व्यक्तियों, स्थानीय समाजों या पब्लिक ट्रस्टों के पास है, किंतु रियासतकालीन जागीर पुनर्ग्रहण के पश्चात इनकी नित्य सेवा-पूजा, भोग-राग, प्रकाश व्यवस्था व मर्यादानुपालन हेतु राज्य सरकार द्वारा देवस्थान विभाग के माध्यम से नियमित 'वार्षिकी' (Annuity/Annual Grant) स्वीकृत की जाती है। इसके प्रमुख उदाहरणों में सागर स्थित श्री गोपीनाथ जी मंदिर (सहायता क्र. 6 - रु 2,928/- वार्षिक), मुंशी बाजार का श्री बिहारी जी मंदिर (सहायता क्र. 10 - रु 2,018.48/-), राजभवन का श्री सीताराम जी मंदिर (सहायता क्र. 11 - रु 1,944/-), बाला किला स्थित श्री करणी माता जी मंदिर (सहायता क्र. 13 - रु 1,848/-), आनंद विलास का श्री महादेव जी मंदिर (सहायता क्र. 19 - रु 1,200/-), तथा प्रसिद्ध श्री भर्तृहरि धाम व पांडुपोल हनुमान मंदिर शामिल हैं।

अलवर के ये 665 पंजीकृत देवालय केवल अतीत की स्थापत्य कला के मूक दर्शक या निर्जीव स्मारक नहीं हैं, बल्कि ये निरंतर पूजा-अर्चना, अष्टयाम सेवा, भोग-राग एवं देवस्थान विभाग के वार्षिक वित्तीय सहयोग से संचालित 'जीवंत मंदिर' (Living Temples) परंपरा के साक्षी हैं। विजयादशमी के पावन अवसर पर मंदिरों में पारंपरिक अस्त्र-शस्त्रों का 'राजकीय शस्त्र-पूजन', भाद्रपद माह में भर्तृहरि का प्रसिद्ध लक्खी मेला, आषाढ़ मास में जगन्नाथ जी की विशाल रथयात्रा, तथा पांडुपोल हनुमान मेला रियासतकालीन मर्यादाओं और राजकीय सहभागिता के साथ आज भी अत्यंत श्रद्धापूर्वक आयोजित किए जाते हैं।

प्रस्तुत समालोचनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि अलवर अंचल का मंदिर स्थापत्य 10वीं शताब्दी की गुर्जर-प्रतिहार युगीन 'महा-मारु' शैली से लेकर 19वीं-20वीं शताब्दी की 'सामरिक-हवेली वास्तुकला' तक कलात्मक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक विकास की एक अनवरत शृंखला प्रस्तुत करता है। नीलकंठेश्वर (राजोरगढ़) का त्रिकुटाकार विन्यास व बिना गारे की पाषाण इंटर-लॉकिंग प्रविधि मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य प्रतिभा का चरमोत्कर्ष है, तो वहीं 'सागर' का जल-स्थापत्य, गर्भगृहों का 'आरायश' शिल्प, तथा बाला किला व नगर-द्वारों के 'प्रहरी देवालय' अलवर रियासत के सामरिक व सौंदर्यपरक नगर-नियोजन को सिद्ध करते हैं। स्वतंत्रता-उत्तर काल में देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा जिले के 665 मंदिरों के सुव्यवस्थित वर्गीकरण (0 प्रत्यक्ष प्रभार, 8 आत्मनिर्भर, 35 सुपुर्दगी एवं 622 वार्षिकी सहायता प्राप्त) तथा नियमित वित्तीय सहायता ने इन सांस्कृतिक धरोहरों को 'जीवंत मंदिर' (Living Temples) के रूप में भावी पीढ़ियों हेतु सुरक्षित रखा है।

अतएव, अलवर अंचल का मंदिर स्थापत्य केवल ईंट, पत्थर, चूने और गारे से निर्मित भौतिक संरचनाओं का संचयन मात्र नहीं है, बल्कि यह क्षेत्र के सामाजिक-धार्मिक इतिहास, राजनैतिक परिवर्तनों, सामरिक प्राथमिकताओं तथा जन-मानस की अटूट आस्था का मूर्तिमंत प्रतीक है। प्रतिहार काल की महा-मारु शैली से आरंभ होकर मध्यकाल की मारु-गुर्जर व भूमिज उप-शैलियों और तत्पश्चात कछवाहा काल की सामरिक-हवेली वास्तुकला तक का यह कलात्मक विकास क्रम भारतीय स्थापत्य परंपरा की निरंतरता और जीवंतता को रेखांकित करता है। राज्य सरकार के देवस्थान विभाग द्वारा इन 665 मंदिरों को प्रदान किए जा रहे वित्तीय, प्रशासनिक एवं विधिक संरक्षण ने यह सुनिश्चित किया है कि ये प्राचीन देवालय आधुनिक काल में भी अपनी सांस्कृतिक पहचान और 'जीवंत मंदिर' (Living Temples) स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखें। भावी अनुसंधानों हेतु यह आवश्यक है कि अलवर जिले के दूरस्थ अरावली क्षेत्रों में स्थित जीर्ण-शीर्ण प्राचीन थानों, कंदराओं तथा जल-संस्थानों के देवालयों का वैज्ञानिक व जी.आई.एस. प्रलेखन किया जाए। ए.एस.आई. (ASI), राज्य पुरातत्व विभाग तथा देवस्थान विभाग के मध्य एक एकीकृत नीतिगत समन्वय स्थापित करके इन स्थापत्य धरोहरों का जीर्णोद्धार किया जाना चाहिए, जिससे अलवर की यह अनुपम सांस्कृतिक व धार्मिक विरासत आने वाली पीढ़ियों हेतु प्रेरणा का स्रोत बनी रहे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. निदेशालय जिला गजेटियर, राजस्थान सरकार, जयपुर (1968). *राजस्थान जिला गजेटियर: अलवर*. जयपुर: गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस, पृष्ठ 120-135.
2. Archaeological Survey of India (1998). *Inventory of Monuments and Sites of National Importance, Vol. 2, Pt. 1 (Jaipur Circle)*. New Delhi: Archaeological Survey of India, pp. 45-52.
3. Meister, M. W., Dhaky, M. A., & Krishna Deva (1991). *Encyclopaedia of Indian Temple Architecture: North India - Period of Early Medieval Temples*. New Delhi: American Institute of Indian Studies & Oxford University Press, pp. 165-172.
4. Hooja, Rima (2006). *A History of Rajasthan*. New Delhi: Rupa & Co., pp. 280-295.
5. देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार (2023). *राजकीय आत्मनिर्भर, सुपुर्दगी एवं सहायता प्राप्त मंदिरों की तहसीलवार मास्टर सूची (अलवर इकाई)*. जयपुर: राजस्थान सरकार.
6. निदेशालय जिला गजेटियर, राजस्थान सरकार (2001). *नया जिला गजेटियर: अलवर (भाग 1 एवं 2)*. जयपुर: जिला गजेटियर विभाग, पृष्ठ 75-90.
7. Alwar State Administration (1917). *Report on the Administration of the Alwar State for 1916-17*. Alwar: Alwar State Press, pp. 12-18.
8. सहसरिया, डॉ. फूलसिंह (1995). *अलवर का इतिहास*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 110-125.
9. अग्रवाल, आर. सी. (1965). 'प्रतिहार युगीन कला व राजोरगढ़ के मंदिर'. *शोध पत्रिका*, उदयपुर, वर्ष 16, अंक 2, पृष्ठ 34-42.
10. Hooja, Rima (2006). *A History of Rajasthan*. New Delhi: Rupa & Co., pp. 310-315.
11. Archaeological Survey of India (1998). *Inventory of Monuments and Sites of National Importance, Vol. 2, Pt. 1 (Jaipur Circle)*. New Delhi: Archaeological Survey of India, pp. 50-55.
12. देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार (2023). *राजकीय आत्मनिर्भर श्रेणी मंदिर सूची (अलवर यूनीक कोड 2025 व 2021)*. जयपुर: राजस्थान सरकार.
13. शर्मा, गोपीनाथ (1989). *राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 180-195.

14. निदेशालय जिला गजेटियर, राजस्थान सरकार, जयपुर (1968). *राजस्थान जिला गजेटियर: अलवर*. जयपुर: गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस, पृष्ठ 140.
15. Meister, M. W., & Dhaky, M. A. (1991). *Encyclopaedia of Indian Temple Architecture: North India - Period of Early Medieval Temples*. New Delhi: American Institute of Indian Studies, p. 168.
16. सहसरिया, डॉ. फूलसिंह (1995). *अलवर का इतिहास*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 130.
17. देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार (2023). *सहायता प्राप्त मंदिर निर्देशिका: अलवर (क्रमांक 6 गोपीनाथ जी)*. जयपुर: राजस्थान सरकार.
18. Hooja, Rima (2006). *A History of Rajasthan*. New Delhi: Rupa & Co., p. 282.
19. Archaeological Survey of India (1998). *Inventory of Monuments and Sites of National Importance, Vol. 2, Pt. 1 (Jaipur Circle)*. New Delhi: Archaeological Survey of India, p. 46.
20. Meister, M. W., & Dhaky, M. A. (1991). *Encyclopaedia of Indian Temple Architecture: North India - Period of Early Medieval Temples*. New Delhi: American Institute of Indian Studies, p. 170.
21. Archaeological Survey of India (1998). *Inventory of Monuments and Sites of National Importance, Vol. 2, Pt. 1 (Jaipur Circle)*. New Delhi: Archaeological Survey of India, p. 48.
22. अग्रवाल, आर. सी. (1965). 'प्रतिहार युगीन कला व राजोरगढ़ के मंदिर'. *शोध पत्रिका*, उदयपुर, वर्ष 16, अंक 2, पृष्ठ 38.
23. Digital Library of India (2001). *Jain Temples of Rajasthan (Archive Record AC 7100)*. New Delhi: Digital Library of India, pp. 85-90.
24. Alwar State Administration (1917). *Report on the Administration of the Alwar State for 1916-17*. Alwar: Alwar State Press, p. 28.
25. शर्मा, गोपीनाथ (1989). *राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 225.